REVIEW OF RESEARCH

1990 ई. से पूर्व बिहार का औद्योगिक परिदृश्य : एक अध्ययन

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

डॉ० मनोज कुमार
एम० ए०, बी० एड०, पी–एच० डी०

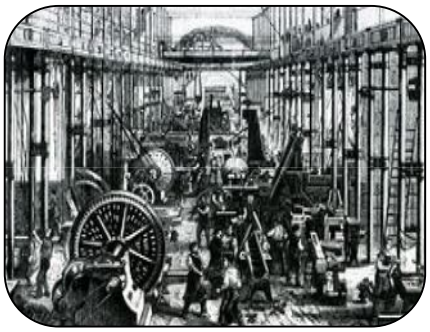

भूमिका

बिहार का अतीत बहुत ही समृद्ध एवं गौरवशाली रहा है। युगों के अंतराल में मानव प्रतिभा यहाँ अभिनव रूपों में व्यक्त होती रही है, जिससे सारा विश्व लाभान्वित हुआ है। यहाँ अध्यात्म और विधिज्ञान की रश्मियां आदिकाल में फूटी। यहां जनक, सीता और बाल्मिकी के पावन चरणों ने सत्ता किया था। इसी भूमि ने दुनिया को सबसे पहला गणतंत्र दिया और सत्ता में जनता की भूमिका को उजागर किया। इस धरती और सत्ता में जनता की भूमिका को उजागर किया। इस धरती पर भारत का पहला साम्राज्य मगध साम्राज्य स्थापित हुआ। जिसके नेतृत्व में देश के एकीकरण का सफल प्रयास हुआ। एक केन्द्रीकृत प्रशासनिक ढांचे का उदभव हुआ।

बिहार का उल्लेख वेदों, पुराणों, महाकाव्यों आदि ग्रंथों में मिलता है। बिहार 24 जैन तीर्थकरों और महात्मा बुद्ध की जन्मभूमि व कर्मभूमि रही है। ईसा पूर्व से ही इस बिहार पर विम्बसार, उदायिन, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक जैसे महाराजाओं के अलावा शुंग तथा कण्व राजवंश के राजाओं ने भी शासन किया। उसके पश्चात कुषाण शासकों और बाद में गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने भी बिहार पर शासन किया। मध्यकाल में मुस्लिम शासकों का इस क्षेत्र पर अधिकार रहा। गुलाम वंश से लेकर लोदी वंश के सुल्तानों के काल में यहां मुस्लिम सबेदार शासन करते रहे। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में बिहार की महत्ता एक बार पुनः बढऋी जब शेरशाह ने हुमायूं को पराजित कर भारत से मुगल शासन को हटा दिया तथा कर्मठ शासक के रूप में अपने आपको बिहार की भूमि पर स्थापित किया। 17वीं शताब्दी में मुगलों के अधीनस्थ विकसित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का एक समृद्धशाली केंद्र बिहार रहा तथा यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भी इस क्षेत्र में सक्रिय रही।

बिहार विहार शब्द का परिवर्तित रूप है। आधुनिक बिहार प्रान्त का नाम पटना जिला के एक छोटे से नगर विहार के नाम पर पड़ा। इस नगर का प्राचीन नाम ओदन्तपुरी था। बंगाल के प्रथम पाल नरेश गोपाल ने एक बौद्ध विहार की स्थापना की थी जो आदन्तपुरी विश्वविद्यालय के नाम से जाना गया था। इसकी प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली हुई थी। मुस्लिम लेखकों ने यहां पर असंख्य बौद्ध विहारों की बहुलता को देखते हुए ओदन्तपुरी को विहार कहना आरंभ किया था।

विहार के नाम उल्लेख सर्वप्रथम मिन्हाज उस सिराज द्वारा 1203–04 के लगभग लिखी गई पुस्तक 'तबकात ए नासिरी' में मिलता है। तुर्क अफगान काल के मुस्लिम लेखकों ने इस प्रदेश की उर्वरता, हरियाली और सुखद जलवायु के कारण इसे वसन्त का प्रदेश समझा और इसे बहार नाद दिया क्योंकि बसंत बिहार के नाम से विख्यात हुआ।

बिहार का गौरवशाली अतीत

बिहार का गौरवशाली अतीत अपने वैभव तथा संसाधन संपन्नता के कारण भारत ही नहीं विश्व के इतिहास में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दुनिया के विभिन्न देश विशेषतः एशियाई देश किसी न किसी रूप में बिहार से सम्बन्ध स्थापित कर यहां की साधन संपन्नता से फायदा उठाने का प्रयास करते रहे है। प्राचीन भारत में जहां अनेक देशों ने यहां से बौद्धिक आध्यात्मिक ज्ञान का

प्रकाश प्राप्त किया, मध्य काल में राजनैतिक धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आए विदेशी आक्रान्ताओं ने बिहार को जी भर कर लूटा खसोटा। मुगल सत्ता की समाप्ति के बाद बिहार को विदेशी शासन के कुपरिणामों को भी भोगना पड़ा।

मध्यकाल में बिहार का क्षेत्र स्थिर नहीं रहा। भिन्न–भिन्न शासको के समय इसकी भौगोलिक सीमांए बदलती रही। कभी इसकी राजधानी बिहारशरीफ रही तो कभी हाजीपुर तो कभी पटना रही। अबुल फजल के अनुसार पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार गड़ही से रोहतास तक120 कोस (300मील) तथा उत्तर में तिरहुत से लेकर दक्षिणी पहाड़ी श्रृंखला तक 110 कोस (275 मील) में फैला था। इसके पूरब में बंगाल, पश्चिम में इलाहाबाद उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विंध्यपर्वत श्रृंखला थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद बिहार पर बंगाल के नवाबों का प्रभाव शुरू हुआ। उसने अलीवर्दी खां को बिहार का डिप्टी गर्वनर नियुक्त किया। 1740 ई0 में अलीवर्दी खां बंगाल का नवाब बना। 1756 ई0 में उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका नाती सिराजुदौला नवाब बना। 1757 ई0 में अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुदौला को पराजित किया। 1764 ई0 में बक्सर का निर्णयक युद्ध हुआ। बंगाल के साथ ही बिहार अंग्रेजी शासन के अधीन आ गया। बिहार के स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में स्थापित करवाने का श्रेय सच्चिदानन्द सिन्हा तथा महेश नारायण को दिया जाता है।

वैदिक काल में पशुपालन तथा कृषि कर्म आर्यो का मुख्य उद्यम था। किंतु साथ ही अन्य व्यवसायों की उत्पति हो चुकी थी। वैदिक साहित्यों में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि नवीन शिल्प कला के उद्भव के बाद में समाज में शिल्पकारों के विविध वर्ग स्थापित हो चुके थे।

इनमें प्रमुख थे–

तक्षन्– बढ़ई	कास–स्त्रोत बनाने वाला
कमार–लोहार	कुलाल–कुम्हार
विषक–वैद्य	कैवर्त्त–मल्लाह

रथकार–रथ बनाने वाला तन्तुवाय–बुनकर

इनके अतिरिक्त ज्योतिषी, नाई, चर्मकार, रसाकार नाविक आदि का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु उन्हें महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। शिल्पकारों में रथकार अथवा बढ़ई को सर्वाधिक प्रधानता मिलती थी जो युद्ध के लिए रथ तथा कृषि के लिए हल का निर्माण करते थे। दूसरा प्रमुख समुदाय कमार का था जो अयस से अस्त्र, हल का फाल तथा बरतन बनाता था। कुछ विद्वान अयस को तांबा अथवा कांसा मानते थे तो कुछ इसे लोहा समझते थे। इतना स्पष्ट है कि वैदिक आर्यो को धातुओं को पिघलाने की विधि का ज्ञान था। चमड़ा चढ़ाने अथवा कमाने का शिला पहले से ही विकसित हो चुका था। बैल की खाल, धनुष की डोर, रथ के घोड़े की लगाम तथा चाबुक बनाने के काम आती थी। माज में शिल्पकार को सम्मान प्राप्त था तथा रथकार एवं कर्मार राजा के अधिकारी वर्ग में शामिल थे।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के उद्योग वैदिक युगीन समाज में करने तथा चमकाने वाले शिल्पकार नगरों में रहते थे। सोने का सिक्का बनाने वाले शिल्पकार को उनमे उत्पादन की गुणवत्ता के आधार पर मजदूरी दी जाती थी। इस काल के अधिकांश चांदी के आभूषणों, तांबे और कांस्य के औजारों, बर्तनों, मूर्तियों तथा अन्य सामग्रियों पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

ईसापूर्व छठी शताब्दी में व्यवसाय और उद्योग

ईसापूर्व छठी शताब्दी में व्यवसाय और उद्योग की बड़ी उन्नति हुई। इस समय तक शिल्पकारों को अपने अपने विद्या से जुड़े कच्चे माल के विषय में विशिष्टता का ज्ञान हो चुका था तथा बाजार में बढ़ती हुई मांग के अनुरूप वे अधिकाधिक मात्रा में उत्पादन पर जोरे देने लगे थे। राज्य की ओर से शिल्पियों को संरक्षण मिल रहा था। जिससे शिल्पियों की उन्नति हो रही थी और राज्य को भी आर्थिक लाभ मिला रहा था। मौर्य युग आते आते बिहार में अनेक प्रकार के शिल्पों और शिल्पकारों का विकास हो चुका था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आए यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने पाटलिपुत्र के शिल्पकारों को समाज का चतुर्थ वर्ग माना है। वैभव विकास के परिपूर्ण दरबार में रखी वस्तुओं, सुन्दर बारीक वस्त्र, सोने और चांदी के बरतन, सुन्दर रत्न जड़ित

कुर्सियां आदि के विवरण से स्पष्ट है कि लकड़ी के नक्काशीदार सामानों मुलायम तथा उत्कृष्ट वस्त्रों हाथी दांत तथा रत्नों के निर्माण में काफी उत्कृष्टता आ चुकी थी। पाणिनी के विवरणों से प्रतीत होता है कि सूती तथा ऊनी वस्त्रों की काफी किस्मों का उत्पादन हो रहा था। हेरोडोटस ने भी लिखा है कि यहां की रूई बहुत सफेद होती है। ऊनी कंबलों के निर्माण का बोध अर्थशास्त्र से भी होता है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में वर्णित है कि इस काल में कई प्रकार के कंबल, बकरी के बालों का कंबल, सफेद कंबल, एक ओर लोम वाले कंबल, दोनों ओर लोम वाले कंबल आदि बनाए जाते थे। जातक ग्रंथ में उद्धृत है कि महल बनाने में 18 प्रकार के शिल्पकारों का सहयोग लिया जाता था। ये शिल्पकार कौन–कौन थे इसकी सूची उपलब्ध नहीं हैं पर इनमें राजमिस्त्री, बढ़ई, लोहार, चित्रकार तथा वास्तुकार अवश्य रहे होंगे।

मौर्य युग के शिल्प और उद्योग की उन्नति

मौर्य युग के शिल्प और उद्योग की उन्नति के परिणामस्वरूप भारत वर्ष की आर्थिक स्थिति तो सुदृढ़ हुई ही, पाटलिपुत्र संपूर्ण विश्व का सबसे समृद्ध वैभवशाली तथा विशाल नगर हो गया। प्राचीन समय का कोई दूसर नगर इसकी तुलना में नहीं ठहर सकता था।

प्राचीन भारत में लोहे के अविष्कार और प्रयोग का संबंध लोगों के भौतिक जीवन में परिवर्तन के साथ था। प्रतीत होता है कि ऋग्वेद कांस्य युग का प्रतिनिधित्व करती है। पर यजुर्वेद में लोहे का उल्लेख पाया जाता है। अयस का अर्थ हे लोहा और जो इसकी वस्तुएं बनाता है वह कर्मकार कहलाता है। इस धातु को खताय कहा गया है। वाजसनेयी संहिता में असय (लोहा), हिरण्य (सोना), लोहा (तांबा), श्याम (लोहा), सीस (शीशा) और त्रपु (रांगा) का उल्लेख है। चित्रित धूसर भाड़ का प्रयोग करने वाले लोहे का इस्तेमाल करते थे तथा कई स्थलों पर लोहे का पया जाना भारत में लोहे का पाया जाना भारत में लोहे के विकास का प्रतीक है। कई उत्खननों में लोहें की वस्तुएं मिली है और प्रतीत होता है कि भारत ई0 पू0 प्रथम सहस्त्राब्दी के उतरार्द्ध में आकर लौह युग में पदार्पण कर चुका था। लोहे को गलाने की प्रक्रिया ज्ञात थी और 700 ई0 पू0 तक भारत में आर्यजन लोहे का उपयोग करने लगे थे। उज्जैन ने लोहे की वस्तुओं का निर्माण व्यापक रूप से होता था। छान्दोग्य उपनिषद में लोहे के उपयोग का उल्लेख है। सूत्र साहित्य में अयस के दो भेद किए गए है लाल और काला। अमरकोश में लोहे के सात नाम और लोहे के जंग के दो नाम दिए गए है। एक लुहार द्वारा इस्पात की हथौड़ी से एक लोहे के टुकड़े के पीटे जाने की चर्चा है।

लोहे के व्यापक प्रचलन के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन मानव अपने हित में करने में सफल हो सका। फलत मानव संस्कृति का विकास तीव्र गति से संभव हो सका। खेती का प्रचलन विशाल क्षेत्र में संभव हो सका और अधिकांश उत्पादन नगर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। कृषि कार्यो का विस्तार हुआ और मकान, गाड़ी नाव आदि बनाना सरल हो गया क्योंकि तांबे की तुलना में लोहा बहुत सस्ता था और किसानों व शिल्पियों द्वारा लौह औजार खरीद पाना संभव हुआ। लोहे के सुधरे औजारों से विकास की प्रक्रिया तीव्र हो सकी।

गुप्तकाल में शिल्प और उद्योग का महत्व बढना

गुप्तकाल में शिल्प और उद्योग का महत्व बढ़ गया था कि कई नवयुवक अपने परंपरागत पेशे को छोड़कर शिल्पकला में दक्षता प्राप्ति हेतु कारीगरों अथवा शिल्पकारों के साथ रहकर व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे थे। इस काल में मृदमांड बनाना, धातु, शिल्प, आभूषण निर्माण, सिक्के बनाना, बुनाई, काशीदाकारी, कपड़े की रंगाई, पत्थर का काम, हाथी दांत का काम तथा काष्ठ कला में अभूतपूर्व उन्नति हुई। बिहार में धातु उद्योग विकसित अवस्था में था। अग्निपुराण में वर्णित है कि अंग में (भागलपुर, के समीप) उच्च गुणवतायुक्त तलवारों का निर्माण, होता था और इसकी देश विदेश में बड़ी मांग थी। धातुओं के उपयोग के संबंध में हुएनसांग लिखता है कि उसने राजा पूर्णवर्मन की बनवाई हुई बुद्ध की तांबे की विशालकाय मूर्ति देखी थी। इसी काल में पूर्ववर्मन नालन्दा में पीतल का एक विशाल मंदिर बनवा रहा था।

गुप्त काल आर्थिक उन्नति का काल माना जाता है। राष्ट्र निर्माण में शिल्पकारों, उद्योगपतियों और व्यवसायियों का काफी योगदान था। जो लाभ कमाकर राष्ट्र को समृद्ध कर रहे थे। समकालीन साहित्य में अनेक प्रकार के धातुओं और रत्नों का उल्लेख मिलता है। इन धातुओं में स्वर्ण, असय, ताम्र, रजत, वज्र, (हीरा),

पहमराग (लाल) पुष्पराज (पुखराज) महानील या इन्द्रनील (नीलम) मरकत (पन्ना) वैद्र्य (विल्लौर) स्फटिक, मणिशीला (संगमरमर) थे। रघुवंशम से पता चलता है कि तंतुवाय वस्त्र बनाने में इनते कुशल थे कि हल्का हवा दे देने से वस्त्र उड़ जाता था। गुप्तयुक में धातु का काम सर्वश्रेष्ठ था। वास्तुकार अपने शिल्प से सुंदर और आकर्षक वास्तुकला बनाता था। उदाहरण मेहरौली लौह स्तंभ जो आज भी जंगमुक्त खड़ा है। गुप्तकालीन सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय हस्त निर्मित मेहरौली का लौह स्तंभ अद्वितीय उदाहरण है।

गुप्तातेर काल में शिल्प उद्योग के विकास ने नवीन नगरों के बसाव तथा नगरों की आर्थिक समृद्धि ने उद्योग, शिल्प तथा धातु से बने भाले, तलवार आदि के उद्योग का उल्लेख किया है, भोज के अनुसार बनारस, सौराष्ट्र और कलिंग के साथ–साथ मगध का खड्ग उद्योग भी राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त था।

बंगाल और बिहार में रेशम के कीड़े पाले जाते थे। बिहार में रेशम के वस्त्र तैयार होते थे। कुटीर उद्योग में कताई बुनाई मुख्य था। रंग बिरंगे वस्त्र बिहार और बंगाल में बनते थे। इन वस्त्रों का विक्रय बाजार मिथिला था। 'वर्णरत्नाकर' में तीस प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है। महंगे वस्त्र के तौलिए बनते थे। कपड़े पर रंगाई छपाई भी होती थी, कीर्तिलता' और वर्णरत्नाकर' में उल्लिखित है कि बिहार के लोहार लोहे को गला कर बंदूक, कटार, तलवार, आदि बनाते थे।

ईटो और पत्थरो का उपयोग भवन, मंदिर, मस्जिद प्रसादों के बनाने के काम में आते थे। हिन्दू शासक व मुस्लिम शासकों ने भवन निर्माण करने वाले कारीगरों का संरक्षण दिया। खपरैल उद्योग का विकास हुआ। काष्ठकला का भी उत्थान हुआ। 1234–36 में धर्मस्वामी ने अपने यात्रा वृतांत में वर्णित किया है वस्त्र बुनाई उद्योग भारत का प्राचीनतम उद्योग था। चरखा और करघा द्वारा वस्त्र निर्माण एक प्राचीन कला है। तन्तु 'ओतु', 'तसर', मयूख', तर्क– ये सभी शब्द बुनाई की प्राचीनता के परिचायक है। इसका विकास गहन और व्यापक रूप से हुआ है। सभी देशों में भारत शायद प्रथम देश है जिसने बुनाई की अभिज्ञता प्राप्त की तथा इसकी सोने की जरी और महीन मलमल बनाने की कला, इसके अद्भूत कौशल से बने हुए और कीमती जड़ाक परिधान प्राचीन काल से भारत के लिए प्रतिष्ठा के कारक रहे है।

पाणिनी ने बुनकर (तुन्तुवॉय) का, बुनाई के स्थान का, करही का, बुनाइ की प्रक्रिया का और वस्त्रों के निर्माण का उल्लेख किया है। वस्त्र उद्योग में उत्तर भारत दक्षिण भारत से आगे था। वाराणसी और बंगाल वस्त्र उद्योग के केन्द्र थे और वहां का मलमल नामी था। काशी में उत्तम कोटि का सूती वस्त्र बनता था।

चर्म उद्योग भी उन्नतिशील था, दारू या पानी रखने का चमड़े का थैला बनता था। तीरंदाजों के हाथों के लिए चमड़े का अंगरक्षक (दास्ताना) बनता था। खाल को सिझाने की कला का उल्लेख ऋग्वेद में और शतपथ ब्राह्मण में भी आया है। चमड़े के जूते और बूट बनते थे। विष्णुपुराण में उपदेश दिया गया है कि बिना जूते का कभी नहीं रहना चाहिए। एरियन ने लिखा है कि भारतवासी जूते पहने रहते थे। चमड़े के काम को चर्मकार करते थे।

वस्त्र उद्योग अत्यधिक विकसित था। इसमें सूतीवस्त्र निर्माण का स्थान सबसे उपर था। मेगास्थनीज ने जो कहा है कि सौंदर्य मध्यकालीन भारत में भी सूती उद्योग सबसे बड़ा उद्योग था जिसका विस्तार संपूर्ण देश में हुआ था। इसके मुख्य केन्द्र बंगाल, बिहार, गुजरात, बनारस, उड़ीसा और नालंदा में थे। सूरत, कांबे पटना, बुरहानपुर और बाद में दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान थट्टा जैसे मुख्य शहर भी विभिन्न प्रकार के कपड़े तैयार करने के लिए मशहूर हो गए सल्तनत काल में इस उद्योग की स्थिति काफी अच्छी रही थी। ढाका में बना मलमल संसार में अपनी बारीकी के लिए मशहूर हो चुका था। इसकी बनी पूरी पोशाक के एक अंगूठी के बीच से निकल सकती थी। सोनार गाँव में अति उत्तम प्रकार का मलमल तैयार किया जाता था। एक टुकड़ें की कीमत चार हजार रूपए तक होती थी।

बिहार में बड़े पैमाने पर होने वाले गन्ने की खेती के परिणामस्वरूप शक्कर उद्योग का उल्लेखनीय विकास हुआ। शक्कर मुख्यतः गन्ने से बनाई जाती थीं। इसके लिए सर्वप्रथम गन्ने के टुकड़ों में काट कर उसे चरखी में दबाया जाता था फिर निकले हुए रस को लोहे की कड़ाहियों में उस समय तक गर्म किया जाता था जब कि के रवेदार गुड़ का रूप धारण न कर लेता था। गुड़ को परिष्कृत कर उसकी गोलियां बनाई जाती थीं और उसे पुनः थोड़ा और शुद्ध करने के बाद सफेद शक्कर बनाया जाता था। शक्कर निर्माण का कार्य वहां बड़े पैमाने पर होता था। समकालीन साहित्य में मिष्ठानों तथा पकवानों के वर्णन से स्पष्ट होता है कि समाज का हर वर्ग इसका उपयोग करता था।

मुगलकाल में पटना सूती और रेशमी वस्त्र का व्यापारिक केन्द्र था। पटना से अंग्रेज सूती वस्त्र क्रय करने के लिए आयेगया।

मध्यकालीन बिहार में गव्य उद्योग

मध्यकालीन बिहार में गव्य उद्योग भी प्रगति पर था। इस उद्योग में गाय भैंस जैसे दुधारू पशुओं के जरिए दूध, दही, घी आदि उपयोग करते थे। पूजा पाठ में भी इसका उपयोग होता था। इसके लिए तिरहुत का क्षेत्र काफी प्रख्यात था। इस काल में चर्म उद्योग का भी अच्छा खासा विकास देखा गया। जूते, चप्पल, थैला, तलवार की खोल जिल्दसाजी, मश्क, रहट पानी निकालने का थैला आदि, इस समय चमड़े के ही बनाए जाते थे। अलबरूनी ने भी इस लघु उद्योग के विषय में जानकारी दी है। इस कीर्तिलता' में भी चर्म उद्योग पर प्रकाश डाला गया है। इस पेशे में चमार जातिके लोग प्रयः जुड़े हुए थे।

मध्यकालीन बिहार में काष्ठ उद्योग में बढ़ई जाति के लोग जुड़े हुए थे। गांव और शहर के बढई दरवाजे, खिलौने, पलंग, कुर्सी, चारपाई तख्त इत्यादि बनाते थे। वर्ण रत्नाकर' में पालकी लकड़ी की गद्धी और चन्दन की तिपाई आदि बनाने का वर्णन है। हस्तशिल्प एवं नाव निर्माण उद्योग भी इस समय विकसित हो चुके थे। प्रसिद्ध तिब्बती बौद्ध पर्यटक धर्मस्वामी ने भी अपने वृतांत में लिखा है कि नावें इतनी बड़ी होती थी कि एक समय में तीन सौ लोग गंगा पार कर सकते थे। वर्ष में 29 किस्म की नावों का उल्लेख मिलता है।

कागज– कागज का निर्माण भी बिहार में लंबे समय से देशी तरीके से होता था। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में कागज मुख्य तौर पर पटना, गया, भागलपुर, पूर्णिया और शहाबाद में बनता था। पटना जिले में बिहारशरीफ में भी बड़ी मात्रा में कागज तैयार होता था। कागज के निर्माण में सन और जूट का इस्तेमाल होता था। गया जिले में अरवल कागज निर्माण का मुख्य केन्द्र था। लगभग एक हजार रिम कागज अरवल में बनता था। 3 से 4 रूपए में एक रिम कागज की बिक्री होती थी।

बिहार में पटना और बिहारशरीफ साबुन निर्माण का प्रमुख केन्द्र था। यह गया पूर्णिया, शहाबाद और मुंगेर में बनाता था। पटना का साबुन पूरे बंगाल प्रांत में काफी लोकप्रिय था। पटना और गया से बनने वाले साबुन का कुल उत्पादन 3000 रूपए का प्रतिवर्ष था।

मिथिला में उद्योग

मिथिला में जूट और तंबाकू उद्योग भी विकसित अवस्था में था। पूर्णिया और सहरसा में जूट की फसल बड़े पैमाने पर उगायी जाती थी। दरभंगा मुजफ्फरपुर और मुंगेर के तंबाकु फैक्ट्री खुला जहां यूरोपियन मॉडल के अनुसार सिगरेट बनता था। दूसरा तंबाकू फैक्ट्री समस्तीपुर के दलसिंहसराय में खुला जो अब अस्तित्व में नही है। तंबाकू का उत्पादन हमेशा होता रहा लेकिन सरकारी प्रतिबंध के कारण इए उद्योग को बढ़ावा नहीं मिला। मिक्सड क्लाथ, वूलेन क्लाथ, कारपेनट्री, पेपर मिल, सोप मेकिंग, माचिस फैक्ट्री आदि विभिन्न लघु उद्योग के रूप में अस्तित्व में थे।

निष्कर्ष

बिहार में वाणिज्य व्यापार अंग्रेजी शासन के पूर्व काफी समृद्ध था। लेकिन बाद में चलकर अपने उद्योगों के हितों की रक्षा के लिए ब्रिटिश सांसद ने केवल भारतीय हस्तशिल्प की वस्तुओं को इंग्लैण्ड में आयात पर निषेध ही नहीं लगाया बल्कि भारतीय शिल्पकारों के कार्यो को भी नियंत्रित किया। स्पष्टः ब्रिटिश सरकार की नीति भारतीय उद्योगों के लिए विनाशकारी थी और भारत को एक उपनिवेश के रूप में विकसित करने की थी। इसने अनेक दशाओं में भारतीय बाजारों को सीमित करने के लिए अंग्रेज उद्योगपतियों के प्रयास में उनकी पर्याप्त सहायता पहुंचायी। कुटीर उद्योग धंधों का विकास हो गया। फलतः वाणिज्य व्यापार अवरूद्ध हो गया। सिर्फ इंग्लैण्ड में निर्मित साम्रगियां ही बिहार में आयात हुई और बिहार का जबर्दस्त शोषण हुआ।

19वीं सदी के पूवार्द्ध तक बिहार के कुटीर और लघु उद्योगों का पूर्णत विनाश हा चुका था बड़े पैमाने पर अंग्रेजी मालों का आयात शुरू हुआ और सस्ते मालों से बाजार पट गया। फलतः लघु उद्योग धंधों के दिन लद गए।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, राधाकृष्ण मिश्र गुलाब–बिहार का इतिहास, 2007 पटना, पृ0 1
2. दास प्रमोदनन्द, कुमार अमरेन्द्र– बिहार इतिहास एवं संस्कृति, 2008 पटना
3. कुमार अजीत–बिहार का इतिहास 2005, पटना पृष्ठ–7
4. दास प्रमोदानंद–पूर्वोक्त पृष्ठ 3
5. कुमार अजीत– पूर्वोक्त पृष्ठ–158
6. शर्मा राधाकृष्ण–पूर्वोक्त पृष्ठ 158
7. कुमार अजीत– पूर्वोक्त पृष्ठ 240 एवं 241
8. चौधरी राधाकृष्ण एवं कुमार अशोक–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास 1986, पटना, पृष्ठ 20, 21 व 22
9. कुमार अजीत– पूर्वोक्त पृष्ठ– 241
10. शर्मा राधाकृष्ण–पूर्वोक्त पृष्ठ–158
11. कुमार अजीत–पूर्वोक्त पृष्ठ 242
12. शर्मा राधाकृष्ण–पूर्वोक्त पृष्ठ–159
13. चौधरी राधाकृष्ण–पूर्वोक्त पृष्ठ–88